(देश देशान्तरों में प्रचारित, सब से सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य १।।) | सम्पादक—श्रीराम शर्मा । | एक अंक का ।=)

वर्ष ४ | मथुरा, जुलाई सन् १९४३ | [अङ्क ७

इस जीवन में ही स्वर्ग का आनंद लीजिये ।

मुद्दतों से सूखे पड़े हुए हृदय सरोवर को प्रेम के अमृत जल से भर लीजिये । इस सरोवर में लोगों को पानी पीकर प्यास बुझाने दीजिये, स्नान करके शांति लाभ करने दीजिये, क्रीड़ा करके आनन्दित होने दीजिये । अपना प्रेम उदारता पूर्वक सबके लिए खुला रखिए । आत्मीयता की शीतल छाया में थके हुए पथिकों को विश्राम करने दीजिए । प्रेम इस भूलोक का अमृत है, आत्म भाव इस भूलोक का पारस है । इस दुर्लभ मानव शरीर को सफल बनाने के लिए आप इन दोनों महातत्वों को उपार्जित करने का प्राण प्रण से प्रयत्न कीजिये ।

अपने प्रेम रूपी अमृत को चारों ओर छिड़क दीजिए, जिससे यह स्मशान सा भयङ्कर दिखाई पड़ने वाला जीवन देव-देवताओं की क्रीड़ा भूमि बन जाय । अपने आत्म भाव रूपी पारस को कुरूप अव्यवस्थित लोहा लक्कड़ से स्पर्श होने दीजिए, जिससे स्वर्णमयी सुरम्य इन्द्रपुरी बनकर खड़ी होजाय । यदि आप इसी जीवन में स्वर्ग का आनन्द लूटना चाहते है, तो उसकी रचना अपने हाथों कीजिये । यह बिलकुल आसान है और पूर्णतः सम्भव है । यदि आप दूसरों को आत्मीयता की प्रेम पूर्ण दृष्टि से देखने लगें तो निश्चय समझिये यह भूलोक ही आपके लिए स्वर्ग सा आनन्ददायक बन जायगा ।

सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा॥

वर्ष४] १ जुलाई सन् १९४३ ई० [अङ्क ७

पुजारी

[रचयिता—श्रीमहावीर प्रसाद विद्यार्थी, टेढ़ा-उन्नाव]

देख, खुला है द्वार, पुजारी !
बैठ गया क्यों फेंक धूल में, फूलों का यह हार पुजारी !
स्वर्ण-कमल-से खिले हुए हैं मन्दिर के वे कलश मनोहर,
मलयानिल के मृदु अञ्चल में फहर रहा केतन-पट-सुन्दर,
दृग मींचे तू सोच रहा क्या देख तनिक उस पार पुजारी ! ॥१॥
क्या सहलाता इन छालों को तू पूजा का थाल उठाले,
देख रहा तू क्या पथ पर ये पर्वत, ये नदियाँ, ये नाले,
शीतल हो जायेंगे छाया में ये जलते अंगार, पुजारी ! ॥२॥
पलमें अरे ! समा जाएँगे तव प्रवाह में ये सब सागर,
मिल जाएँगी नदियाँ तुझमें डूबेंगे नभ-चुम्बी गिरिवर,
रुक न सकी है अबतक जगमें शुद्ध प्रेमकी धार, पुजारी ! ॥३॥
साज सजाए आज जा रहा तू जिसकी पूजा करने को,
आएगा वह स्वयं दौड़कर तुझसे पथ में ही मिलने को,
गूँथ हृदय के टुकड़े तुझको पहनाएगा हार, पुजारी ! ॥४॥

उतर स्वर्ग से भूमण्डल पर 'सत्' की अमर ज्योति आती है।
वीणा बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है॥

मथुरा. १ जौलाई सन् १९४३ ई०

आध्यात्म विद्या की नवीन शिक्षा।

—:(❀):—

आध्यात्म वाद एक ऐसा महा विज्ञान है, जिसके ऊपर शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक सब प्रकार की उन्नतियाँ निर्भर हैं। प्राचीन काल में गरीब से लेकर राजा तक अपने बालकों को शिक्षा के लिए योगियों के आश्रम में छोड़कर निश्चिन्त हो जाते थे। क्योंकि वे समझते थे कि आध्यात्म शिक्षा, मानव जीवन को सुसंचालित करने की एक वैज्ञानिक पद्धति है, सफल जीवन बनाने की एक कला पूर्ण विद्या है। जिसके द्वारा बलवान, वीर्यवान, तेजस्वी, योद्धा, धनी प्रतिष्ठित, लोक प्रिय, उच्च पदारूढ़, अधिकारी, विद्वान एवं महापुरुष बना जा सकता है। आज भिखमंगों ने योग के नाम को कलङ्कित करने में कुछ उठा नहीं रखा है, तो भी मूल तत्व की सत्यता पर जरा भी आँच नहीं आया है।

आत्म-विज्ञान-नकद धर्म है। उसके फल की प्रतीक्षा के लिए परलोक की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती, वरन् 'इस हाथ दे उस हाथ ले' की नीति के अनुसार प्रत्यक्ष फल मिलता है। व्यापार में अधिक लाभ, नौकरी में सुविधा और तरक्की, पत्नी का प्रेम, पुत्र, शिष्य और सेवकों का आज्ञा पालन, मित्रों का भ्रातृ भाव, गुरुजनों का आशीर्वाद, परिचितों में आदर, समाज में प्रतिष्ठा, निर्मल कीर्ति, अनेक हृदयों पर शासन, निरोग शरीर, सुन्दर स्वास्थ्य, प्रसन्न चित्त, हरघड़ी आनन्द, दुख शोकों से छुटकारा, विद्या में वृद्धि, तीव्र बुद्धि, शत्रुओं पर विजय, वशीकरण का जादू, अकाट्य नेतृत्व, प्रभावशाली प्रतिभा, धन-धान्य, तृप्ति दायक भोग वैभव ऐश्वर्य, ऐश-आराम, सुख-सन्तोष, परलोक में सद्गति, यह सब सम्पदायें प्राप्त करने का सीधा मार्ग आध्यात्मवाद है। इस पथ पर चलकर जो सफलता प्राप्त की जाती है, वह अधिक दिन ठहरने वाली, अधिक आनन्द देने वाली और अधिक आसानी से प्राप्त होने वाली होती है। एक शब्द में यों कहा जा सकता है, कि सारी लौकिक और पारलौकिक इच्छा आकांक्षाओं की पूर्ति का अद्वितीय साधन आध्यात्म वाद है।

प्राचीन पुस्तकों में 'कल्पवृक्ष' नामक एक ऐसे वृक्ष का उल्लेख मिलता है, जिसके समीप जाकर जो इच्छा की जाय, वह तुरन्त ही पूरी हो जाती है। ढूँढने वालों को बहुत खोज करने पर भी किसी देश में ऐसा पेड़ अभी नहीं मिला है, लेकिन हम कहते हैं कि वह वृक्ष है और दूर नहीं, आपके अपने अन्दर छिपा हुआ है। यदि आप आत्म साधना द्वारा उसके समीप तक पहुँच जावें तो निस्सन्देह आप अपनी समस्त आकांक्षायें पूर्ण कर सकेंगे, इस कल्पवृक्ष के पास पहुंचने का जो मार्ग है उसे ही आध्यात्मवाद, ब्रह्म विद्या या योग साधन कहते हैं। प्रफुल्ल, आनन्द मय और सन्तुष्ट जीवन बिताने के लिए हरएक व्यक्ति को इसी मार्ग से चलना पड़ता है।

पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जी जब पाश्चात्य देशों का भ्रमण करके वापिस आये थे, तो उन्होंने कहा था कि गोरी जातियाँ आध्यात्म मार्ग के प्रारम्भिक सिद्धांतों का पालन कर रही हैं और उसके फल स्वरूप जो शक्ति प्राप्त होती है, उससे राजसी सिद्धियों का सुख भोग रही हैं। भारतवासी योग के नाम पर बगल बजाते हैं, पर उसका आचरण

बिलकुल भूल गये हैं, जिस दिन ऋषि सन्तान अपने इस शक्तिशाली शस्त्र को हाथ में पकड़ेगी उस दिन दिखा देगी कि शक्ति, समृद्धि और स्वाधीनता हम भी प्राप्त कर सकते हैं।

× × ×

अखंड-ज्योति ऐसे ही व्यवहारिक आध्यात्म वाद का प्रचार करती है, जो तर्क प्रमाणों से युक्त है, बुद्धि ग्राह्य है और नकद धर्म की तरह तुर्त-फुर्त अपना चमत्कारी फल दिखाता है कैसी ही कठोर दुखदायी परिस्थिति में आप पड़े हुए हैं, इस महाविज्ञान की अमर बूटी का एक घूँट गले से नीचे उतरते ही शान्ति लाभ करेंगे और अपनी व्यथा में तत्क्षण समाधान पावेंगे।

आधुनिक नवीन तम मनोवैज्ञानिक खोजों और उपनिषदों के प्राचीन सिद्धान्तों का समन्वय करके एक ऐसी शृंखला बद्ध विचार पद्धति की रचना की गई है, जो जलपान की तरह सरल, मधु सेवन की तरह बिना झंझट की, मिर्च की तरह असर करने वाली, सुई के समान पैनी और पैसे के समान त्वरित फल देने वाली है। यह विचार पद्धति, आठ पुस्तकों में प्रकाशित हो रही है। छापेखाने में तीव्र वेग से उनकी छपाई हो रही है। जुलाई तक पाँच पुस्तकें छप चुकी है। जुलाई के दूसरे सप्ताह में आठों पुस्तकें छप कर तैयार हो जाँयगी।

बहुत से श्रद्धालुजन ऐसी शिक्षा प्राप्त करने के लिए हमारे यहाँ आया करते हैं, जिनसे उनका वर्तमान जीवन उन्नति और समृद्धिशाली हो। माला जपने का मन्त्र बता कर हम अपना कर्तव्य समाप्त नहीं करते वरन् उन आगन्तुक मित्रों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करके, वर्तमान कठिनाइयों को दूर करने की क्षमता पैदा करते हैं। जिन शिक्षा पद्धति के द्वारा अनेक प्रेमीजन आशातीत लाभ उठा चुके हैं, उसे अब पुस्तकाकार प्रकाशित करके समस्त पाठकों के लिए सुलभ किया जा रहा है। परिस्थितियाँ जरा अनुकूल होने पर सम्भवतः अगले वर्ष यहाँ मथुरा में एक ऐसा विद्यालय भी स्थापित करेंगे। जिसमें हमारे निकट कुछ समय तक रहकर वर्तमान जीवन को उन्नतिशील बनाने की व्यवहारिक एवं ठोस शिक्षा दी जा सके। जब तक वैसी व्यवस्था नहीं होती, तब तक हमारी इन नवीन पुस्तकों के आधार पर अपने अपने स्थानों पर रहते हुए लाभ उठाया जा सकता है। हम विश्वास दिलाते हैं कि विचार पूर्वक इन पुस्तकों को पढ़ने मात्र से हृदय में एक नवीन प्रकाश का आविर्भाव होगा, उन्नति मार्ग पर चलने के लिए नाडियों में एक नवीन विद्युत शक्ति दौड़ने लगेगी। हर पाठक से हमारा निजी अनुरोध है कि इन आठ पुस्तकों में वर्णित शिक्षा को अविलम्ब मनन करें और उस पर एक कदम चलने से भी कितना लाभ होता है, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करें।

—श्रीराम शर्मा।

कथा—

कर्म फल की सचाई।

शाश्वत नगर के राजा सोमक के कोई सन्तान न थी. वे सन्तति प्राप्त के लिए बड़े आतुर रहते, जिसे किसी लौकिक पदार्थ की अत्यन्त तृष्णा होती और उसे पाने के लिए विवेक छोड़ देता है, उस मनुष्य को या तो वह वस्तु प्राप्त ही नहीं होती या होती है तो बड़े बुरे और विकृत प्रकार की, क्योंकि तृष्णा और अविवेक की आसुरी छाया पड़ने के कारण उसमें तामसी तत्व मिल जाते हैं, तदनुसार उस वस्तु की आकृति बड़ी कुरूप हो जाती है।

आखिर सोमक को एक पुत्र प्राप्त हुआ, पर वह अत्यन्त लालसा और तृष्णा के कारण एक जन्तु की तरह था. सारे अङ्ग उसके बड़े बेडौल थे. कोई अङ्ग किसी जन्तु से मिलता जुलता था तो कोई किसी से. स्त्री के पेट से पैदा हुआ वह पशु रूप धारी बालक एक विचित्र आकृति का था, उसे देखने के लिए दूर दूर से लोग आते।

ऐसे पुत्र को पाकर राजा को सन्तोष तो न हुआ पर तो भी आखिर अपना पुत्र था. ज्यों त्यों करके उसका लालन पालन होने लगा. बालक बढ़ने लगा. कौतूहल वश रानियां उसे खेल खिलातीं और उसके भोलेपन पर मुग्ध होजातीं. कुछ दिनमें यही बालक सारे रनवास का प्रिय पात्र बनगया. राजा भी उसे स्नेह करने लगे।

कहते हैं कि तृष्णा सौ मुख वाली होती है. एक मुखको तृप्त कर दिया जाय तो अन्य मुखों को भूख लगजाती है. इन सबको एक साथ तृप्त कर देना कठिन है. सोमक को बहुत पुत्रों की लालसा थी, वे इस एक जन्तु से सन्तोष न कर सके. उपायों की ढूंढ़-खोज करते-करते अन्त में उन्हें एक तान्त्रिक से भेंट हुई। जो वाममार्ग की अघोर साधनाओं के सम्बन्ध में अनेक अनुष्ठानों की मर्म उपासनाओं में पारङ्गत होचुका था. राजा ने उसे प्रसन्न करके इस बात के लिए रजामन्द कर लिया कि अनुष्ठान द्वारा उसे सौ पुत्र प्राप्त करा देगा। उस अनुष्ठान में वर्तमान पुत्र को बलिदान करने की शर्त थी, राजा खुशी-खुशी इसके लिए तैयार होगया।

अनुष्ठान हुआ. मख में उस निरपराध जन्तु को बलि देने के लिए उपस्थित किया गया. रानियों ने उसे इतने स्नेह से पाला था, इस प्रकार उस पोष्य पुत्रकी हत्या होते देखकर वे अश्रुपात करनेलगीं. सगी माता तो बेहोश होकर गिर पड़ी, फिर भी राजा का कार्य न रुका. 'मुझे और चाहिए' 'बहुत चाहिए' के सन्निपात में प्रसित राजा ने बालक का गला रेत डाला. निर्धारित अनुष्ठान पूरा होगया.

राजा के सौ रानियाँ थीं, सभी गर्भवती होगईं. एक वर्ष के अन्दर सभी ने पुत्र प्रसव किये, सूना रनवास हराभरा दीखने लगा, बालक किलकारियां मारते हुए खेलने लगे, राजा की तृष्णा के जलते तवे पर सन्तोष की कुछ बूंदें पड़ती दिखाई देने लगीं. नगर के धर्मात्मा पुरुष इस घटना से चिन्तित होने लगे, प्रश्न और सन्देहों के तूफान उनके मनमें उठने लगे. अधर्म और अन्याय से जब ऐसे सुन्दर परिणाम उपस्थित हो सकते हैं और बेचारे धर्म को निष्फल पाकर कोई उसे टके सेर नहीं पूछता. क्या, सचमुच धर्म व्यर्थ है और अधर्म से इच्छित फल प्राप्त होते हैं. इन सन्देहों के साथ-साथ नास्तिकता के बीजाङ्कुर जमने लगे.

ईश्वर के यहाँ देर है अन्धेर नहीं, बुरे को बुरा और अच्छे को अच्छा फल तो अवश्य मिलता है, पर कुछ देर हो जाती है, यही इस माया का गोरख-धन्धा है. यदि काम का तुरन्त फल मिल जाता तो सारा संसार धर्मात्मा होगया होता। इच्छा, रुचि, स्वतन्त्रता और कर्तव्य की तब तो कोई आवश्यकता ही न रहती. गड़रिये की तरह यदि लाठी लेकर इन भेड़ों को ईश्वर हर घड़ी हाँकता फिरता तो मनुष्य की 'स्वेच्छा, नामक कोई वस्तु न रह संसार का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाता।

चींटी मरने को होती है तो उसके पङ्ख उपजते हैं, अन्यायी का जब अन्त होना होता है तो उसे एकबार खूब जोर से चमक कर अपना पिछला पुण्य फल शीघ्र से शीघ्र समाप्त कर देने की आवश्यकता होती है. इसी लिए जिनके पाप का घड़ा भर जाता है, वे अनन्त काल तक नरक में रहने के लिये बचेखुचे पुण्यों को भुगतते हैं।

एक दिन अचानक महल में अग्नि लगी, सारा रनवास जलकर भस्म होगया। कोई भी प्राणी उसमें से जीवित न बच सका। समस्त राज परिवार घास फूंस की तरह जलता हुआ मुट्ठी भर खाक का ढेर बन गया। कल जो राज भवन नाच रङ्गसे गुलजार होरहा था, आज उसमें २०१ प्राणियों की चिताएं जल रहीं थी। दैवी प्रकोप की एक टक्कर ने जनता की कर्म फल सम्बन्धी समस्त आशङ्काओं का समाधान कर दिया।

कथाकारों का मत है कि राजा सोमक का महल एक ध्वंसावशेष खंडहर मात्र रह गया, उसमें २०१ चिताएं यथा स्थान विराजमान थीं। तृष्णा और अधर्म की व्यर्थता पर हंसता हुआ वह मरघट अपने आन्तकित कलेवर को बखेरे पड़ा था। सघन अन्धकार में उधर से निकलने वाले पथिक देखते और सुनते थे, कि राजा सोमक और अघोरी कापालिक जलती हुई लकड़ियां उठा उठाकर एक दूसरे के मुंह में ठूंसते हैं और पीड़ा से छटपटाते हुए भूमि पर गिर पड़ते हैं। इसी दृश्य की पुनरावृत्ति वहाँ रात भर होती रहती है। जब वे दोनों थक कर चूर चूर हो जाते हैं तो वही 'जन्तु-पुत्र' शीतल जलकी कुछ बूंदें उनके ऊपर छिड़क जाता है।

इस प्रकार शाल्वन नगर के सोमक राज वंश का दुखद अन्त होगया। युग बीत गये, घटना पुरानी होगई, पर कर्म फल की सचाई आज भी सुस्थिर शिला की भांति उस साक्षी श्मशान में पड़ी सोई हुई है।

सन्यास या कर्म योग ?

(योगी अरविन्द घोष)

गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने बारम्बार अर्जुन को सन्यास का आचरण करने से क्यों रोका है? उन्होंने सन्यास धर्म का गुण तो सहर्ष स्वीकार किया है, पर वैराग्य और कृपा के वश अर्जुन के बार बार जिज्ञासा करने पर भी श्री कृष्ण ने कर्म पथ के को न मानने की अनुमति नहीं दी। अर्जुन ने जिज्ञासा की कि यदि कर्म से कामना रहित योग युक्त बुद्धि श्रेष्ठ है तो आप क्यों गुरुजनों की हत्या रूपी भीषण कर्म में मुझे प्रवृत्त कर रहे हैं? बहुतों ने अर्जुन का यह प्रश्न पुनरुत्थापन कर गया है अर्थात् आजकल बहुत से लोग अर्जुन के पक्ष में हैं, यहां तक कि कितने ही लोग भगवान् श्रीकृष्ण को निकृष्ट धर्मोपदिष्टा और कुपथ प्रवर्तक कहने में भी संकुचित नहीं हुए।

भगवान् कृष्ण ने समझाया है कि सन्यास से त्याग श्रेष्ठ है अर्थात् अपनी इच्छा से भगवान् का स्मरण करके निष्काम भाव से अपने धर्म की सेवा करना ही श्रेष्ठ है। त्याग का अर्थ कामना या इच्छा का त्याग है। इस त्याग की शिक्षा के लिये पर्वत अथवा निर्जन स्थान में आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं। भगवान् का यह उद्देश्य नहीं है कि यह आनन्दमय क्रीड़ा ढोंगियों का खेल हो अर्थात् अनधिकारी लोग गेरुआ वस्त्र धारण कर 'संसार मिथ्या है', आदि बातें कह कर ढोंग रचें। ईश्वर तो जीव जीव को अपना सखा और साथी बनाकर संसार में कर्तव्य कराता हुआ आनन्द का स्रोत बहाना चाहता है।

हँसमुख रूजवेल्ट

[लेखक—श्री० महादेवप्रसाद गुप्त]

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति श्री फ्रेंकलिन रूजवेल्ट किसी समय पक्षाघात रोग से पीड़ित थे। यदि भारत में कोई व्यक्ति पक्षाघात रोग से पीड़ित होता तो समझ लेता कि मृत्यु का पूर्वाभास आरम्भ हो गया है। पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट दूसरे ही मसाले से बने हैं। उन्होंने खूब लग कर व्यायाम किया और भोजन आदि के सम्बन्ध में सतर्कता से काम लिया। अब उनका स्वास्थ्य पक्षाघात का दौरा गिरने के पहले से भी अच्छा है।

अब से बीस वर्ष पहिले की बात है। बालकों में पक्षाघात का रोग बुरी तरह फैल निकला। कहीं-कहीं उसने वयस्क स्त्री-पुरुषों पर भी हाथ साफ किया। इन्हीं में एक रूजवेल्ट थे। कई दिनों तक वह जीवन और मृत्यु के बीच में लटकते रहे। इसके बाद यकायक उन का रोग शान्त हुआ। पर अब वह बिलकुल ही दूसरे मनुष्य हो गये थे न हाथ हिला सकते थे न पैर। उनके मित्रों ने समझ लिया कि बस, अब बाकी उम्र पहियादार कुर्सी पर काटेंगे।

पर यदि उनके मित्रों का ऐसा विचार था तो राष्ट्रपति रूजवेल्ट उनसे सहमत न थे। वह जार्जिया गये और वहां गर्म सोतों में स्नान किया। धीरे-धीरे उनके हाथ-पांव खुलने लगे। उन्होंने हाथ-पांव निकम्मे होने पर भी पानी में तैरने की एक ऐसी नई विधि निकाली जिसके द्वारा वह केवल छाती की सहायता से तैर सकते थे। जल से बाहर निकलने पर वह अपनी सारी शारीरिक और मानसिक शक्ति अपने हाथों पर अधिकार रखने में लगा देते। धीरे-धीरे उनके पांव हिलने लगे।

इस समय स्वास्थ्य की कान्ति उन के शरीर से फूट पड़ती है। उनकी बाहें किसी पहलवान की बांह की भांति स्वस्थ हैं। हां, उनकी टांग अभी तक प्रायः निकम्मी हैं। काम करते समय वह अपनी टांगों को लोहे के फीतों से जकड़े रहते हैं। उनमें कार्यकारिणी शक्ति की इतनी प्रचुरता है कि वह सुबह के चार बजे से रात के बारह बजे तक लगातार काम करते रहते हैं।

उनका कलेवा बड़ा सादा है। संतरे का रस और एक गिलास दूध। पर सप्ताह में वह चार बार रोटी और मक्खन भी खाते हैं। उनका दोपहर का भोजन उनकी काम करने की मेज पर ही लगा दिया जाता है। उन्हें इतनी फुरसत नहीं कि अपने परिवार के साथ भोजन कर सकें। पर जब वह परिवार के साथ भोजन करते हैं तो एक दो नहीं, बीसों आदमी आमन्त्रित होते हैं। वे सब स्वादिष्ट पदार्थों पर हाथ साफ करते हैं। पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट हलके भोजन से ही अपना सन्तोष कर लेते हैं। वह कभी कुछ और कभी कुछ उठाते जाते हैं और उस समय उपस्थित डाक्टरों को उनकी विवेचन बुद्धि की सराहना करनी पड़ती है।

पर यदि यह कहा जाय कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट के स्वास्थ्य में कायापलट व्यायाम या भोजन ने किया, तो भूल होगी। उनके कायाकल्प का रहस्य है उनका जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण। वह बड़े ही आशावादी हैं और हमेशा हँसते रहते हैं। उनकी मुस्कराहट अब इतनी प्रसिद्ध होगई है कि वह संसार भर में 'मुस्कराने वाले राष्ट्रपति' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र के प्रधान शासन पद पर काम करते हुये भी उनका स्वास्थ्य बना हुआ है। यह पद इतना उत्तरदायित्वपूर्ण है कि हार्डिंज और विलसन अपने

अवधि समाप्त होने के बाद अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। एक रूजवेल्ट हैं जिनके बारे में एक चिकित्सक ने कहा है कि वह छः वर्ष तक राष्ट्रपति के पद पर काम करने के बाद अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ दिखाई पड़ते हैं।

दिन भर में कम-से-कम तीस बार भेंट मुलाकात करनी पड़ती है। इन सारे अवसरों पर राष्ट्रपति रूजवेल्ट मुलाकातियों के साथ बात करते हैं और बीच-बीच में खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। वह किसी का उपहास करते हो, सो बात नहीं है। वास्तव में वह संसार को क्रीड़ा स्थल समझते हैं और उन्होंने निश्चय कर लिया है कि जहां तक उनसे सम्भव होगा, वह चिन्ता और उदासी को पास न फटकने देंगे। वैसे राज्य की चिन्ता ने उनके चेहरे पर झुरियां डाल दी हैं, पर उन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो वह चिन्ताओं से दिन-रात कभी न समाप्त होने संघर्ष करते रहते हैं।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट संध्या के ६-३० बजे अपने लिये खासतौर से तैयार किये गये तालाब में जाते हैं। तालाब में कूदने से पहले एक सादा सा बनियान पहन लेते हैं। इसके बाद खूब तैरते हैं। साथ ही उनकी धर्मपत्नी भी रहती हैं। इसके बाद वह निकल कर वाष्प स्नान करते हैं और फिर शरीर पर मालिश करवाते हैं। कभी-कभी वह केवल वाष्प स्नान और मालिश ही काफी समझते हैं।

जब उन्होंने पहली बार राष्ट्रपति का पद ग्रहण किया था तो उनकी आयु ५१ वर्ष की थी। अब वह ५७ वर्ष से अधिक हैं। चेहरे पर गम्भीरता की एक हलकी मुद्रा आ विराजी है। पर वैसे शरीर में पहले से भी अधिक फुर्ती है।

एक हो जाओ।

[श्री स्वामी विवेकानन्दजी]

संकल्प ही संसार में अमोघ शक्ति है। दृढ़ इच्छा शक्ति वाले पुरुषों के शरीर से मानो एक प्रकार का तेज निकला करता है और उनका मन जिस अवस्था में रहता है वैसा ही वे दूसरे के मन को भी बना देते हैं और जब एक शक्ति शाली पुरुष की शक्ति से बहुत लोगों के भीतर वह एक ही प्रकार का भाव उत्पन्न होता है, तभी हम शक्ति शाली होते हैं। एक प्रत्यक्ष उदाहरण देखिए। चार करोड़ इंग्रेज आप ४० करोड़ भारत वासियों पर किस तरह शासन कर रहे हैं। संघ ही शक्ति का मूल है। शायद आप यह कहें कि यह तो जड़ शक्ति के द्वारा ही सिद्ध हो सकता है, इसलिए आध्यात्मिक शक्ति की क्या आवश्यकता है? देखिए, ये चार करोड़ इंग्रेज अपनी सारी इच्छा शक्ति को एकत्र किये हुए हैं उसी के द्वारा ही उनमें असीम शक्ति आती है और आप ४० करोड़ होते हुए भी अलग अलग हैं। भारत के भविष्य को उज्वल करने का मूल रहस्य संघ—शक्ति संग्रह, विभिन्न इच्छा शक्तियों का एकत्र करना ही है। मेरे मानसिक नेत्रों के सन्मुख ऋग्वेद का अपूर्व मन्त्र है—"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे, ...१०।१९१।२"

आप सब लोक एक अन्तःकरण के होजाइए। क्यों कि प्राचीन काल में देवता लोग एक मन होने से ही अपना भाग प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। आप आर्य, द्रविण, ब्राह्मण, अब्राह्मण आदि तुच्छ विषयों को लेकर विवाद में फंसे रहेंगे उतना ही भावी भारत के उपयुक्त शक्ति संग्रह से बहुत दूर रहेंगे। भारत का भविष्य केवल एक बात पर निर्भर करता है वह है 'एकता'।

आपत्ति धर्म।

युग परिवर्तन के सन्धिकालों में अक्सर बड़े विप्लव, युद्ध, क्लेश तथा दुर्भिक्ष होते हैं। पर्व समय में त्रेता के अन्त और द्वापर के आरम्भ की संधि में एक बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा। ऐसा बड़ा अकाल उस युग में पहले कभी नहीं हुआ था। अन्न के दर्शन दुर्लभ होगये। लोग भक्ष अभक्ष खाकर जैसे तैसे अपना जीवन निर्वाह करने लगे।

विश्वामित्र ऋषि भी इस भयंकर समय में भूख से पीड़ित होकर इधर उधर व्याकुल फिरने लगे। करते क्या, अन्न मिलना कठिन था, क्षुधा की पीड़ा से प्राण जाने का प्रश्न उपस्थित होरहा था। अभक्ष खाने में धर्म जाने का भय था। मन में बड़ा संघर्ष चल रहा था, एक ओर प्राण जाने का भय था दूसरी ओर धर्म मर्यादा थी।

ऋषि, तत्व दर्शी थे, यदि लकीर के फकीर और अन्ध विश्वासी होते हो वर्तमान काल के कूपमंडूक और अंध विश्वासी धर्मध्वजियों में और विश्वामित्रजी में क्या अन्तर रहता। परिस्थितियों की पेचीदगी में धर्म के मूल तत्व पर उन्हें विचार करना पड़ा। मनुष्य की आत्मोन्नति के लिए धर्म व्यवस्था की रचना विद्वान् पुरुषों ने की है। न कि किसी अनावश्यक बन्धन में बाँधकर जीव की स्वाभाविक आत्मोन्नति को रोकने के लिए उन्हें बनाया गया है। यह व्यवस्थाऐं आवश्यकतानुसार बदलती हैं और आपत्तिकाल में उन्हें बदलना पड़ता है।

विश्वामित्र ने सोचा। यदि भोजन जैसी साधारण व्यवस्था की हठ में प्राण चले गये तो यह कोई बुद्धिमानी न होगी। शरीर ईश्वर का मन्दिर है, ईश्वर की आज्ञाओं का संसार में प्रचार करने के लिए इस शरीर का रहना आवश्यक है। इसलिए मुझे अभक्ष भोजन करके भी शरीर को जीवित रखना चाहिए। ऐसा निश्चय करके विश्वामित्रजी जैसे भी मिले, जो भी मिले, उसी भोजन को प्राप्त करने के लिए चल दिये।

चलते चलते कौशिक पुत्र विश्वामित्र एक चाण्डालों के नगर में पहुँचे। अन्न उनके यहाँ था ही कहाँ? मांस उन लोगों के घरों में मौजूद था पर मांगने से वह लोग कष्टोपार्जित मांस मुफ्त में देने को तैयार न होते। इस लिए दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर जब सब लोग सो गये तो विश्वामित्र चुपके चुपके एक चांडाल के घर में घुसे और एक मरे हुए कुत्ते की टांग का मांस चुराने लगे।

आहट पाकर घर का मालिक जाग पड़ा। वह कृष्ण वर्ण, दैत्याकार चाण्डाल अपनी लाल-लाल आँखें मलता हुआ उठ बैठा और लाठी लेकर कर्कश स्वर में गर्जना करता हुआ मांस चुराने वाले को मारने के लिए लपका।

आपत्ति को आगे आती हुई देखकर ऋषि ने चिल्ला कर कहा— "अरे भाई, मारना मत, मैं विश्वामित्र हूँ" चाण्डाल के पाँवों तले से जमीन खिसक गई। उसे सहसा अपने कानों पर विश्वास न हुआ! मेरे घर में और कुत्ते का मांस चुराने के लिए विश्वामित्रजी आवेंगे यह भला कैसे संभव है। उसने दीपक जलाया और बार बार आंख खोलकर देखा, यह सचमुच विश्वामित्र ही थे।

चाण्डाल ने कहा—हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? एक तो चोरी करना पाप, दूसरे चाण्डाल के घर से, इस पर भी कुत्ते का मांस, यह तो तिगुना पाप है आप तो धर्म के आधार हैं इस पर भी ऐसा कार्य करने को क्योंकर तैयार होगये? आपका ऐसा करना उचित न था।

विश्वामित्र ने कहा—हे श्वपच ! तेरा कहना ठीक है। पर जिस धर्म का तू उपदेश कर रहा है वह साधारण समय के लिए है। आपत्ति काल के लिए आपत्ति धर्म अलग है। यदि कभी दो अत्यन्त बुरे काम सामने आवें जिनमें से एक को किये बिना छुटकारा न मिले तो कम बुरे काम को कर लेना चाहिए। यदि मेरा शरीर मोहग्रस्त अवस्था में केवल मेरा ही होता तो समाज की साधारण व्यवस्था कायम रखने के लिए भी उसे त्यागा जा सकता था, पर अब तो यह शरीर मेरा न रहकर समस्त संसार का होगया है, यह दिन रात विश्व कल्याण के कार्यों में जा रहता है इसलिए इसकी रक्षा के लिए खान पान सम्बन्धी नियम तोड़ देने में कुछ हर्ज नहीं। किसी महान् कार्य के करने में यदि छोटी मोटी बुराइयां होती हों तो उनके लिए सोच नहीं करना चाहिए। लोक कल्याण के लिए, पवित्र उद्देश से चोरी आदि त्याज्यकर्म भी किये जासकते हैं और उनका पाप, कर्ता को नहीं लगता।

उपदेश बहुत गंभीर था। चाण्डाल उसे समझने में समर्थ नहीं होसका। उसने कहा—ब्रह्मन् ! मैं स्वेच्छा से यह नहीं कह सकता कि आप इस कुत्ते की टांग के मांस को चुरा ले जाइए। मैं मुँह फेरकर खड़ा हो जाता हूं आप मेरी दृष्टि बचाकर इसे लेजासकते हैं।

ऋषि ने समझा कि यह अपनी मनोभूमि के अनुसार ठीक ही कहता है वे उसकी दृष्टि बचाकर कुत्ते की टांग चुरा लाये और उसको पकाकर यज्ञार्पण करके भोजन किया और अपने प्राण बचाये। महाभारत में लिखा है कि उस भोजन की यज्ञाहुति प्राप्त करके देवता लोग बहुत प्रसन्न हुए जिससे तुरन्त ही घनघोर वर्षा होने लगी और दुर्भिक्ष मिटगया। ऋषि के यज्ञ कर्म से पृथ्वी पर खूब अन्न उत्पन्न हुआ और प्रजा के कष्टों का अन्त होगया।

मोटी बुद्धि के चाण्डाल को कुत्ते का मांस चुराना अधर्म प्रतीत होता था पर ऋषि दृष्टि और देव दृष्टि से वह आपत्ति धर्म के अनुसार यज्ञ कार्य था। ऐसे यज्ञ भी सर्वथा पुण्य मय और लोक कल्याणकारी ही होते हैं।

कृतज्ञता ज्ञापक

इस मास ज्ञान यज्ञ की सहायता के लिए कागज फण्ड में निम्न लिखित सहायतायें प्राप्त हुई है। अखण्डज्योति प्रेषक महानुभावों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करती है।

३॥) श्री जगत नारायणजी कथावाले, पिनाहट।
१) श्री बंशीधरजी लोहिया, कोटरा।
१) श्री आनन्दरूपजी गुप्ता, हापुड़।
१) श्री सूरजप्रसादजी बज़ाज, शाहाबाद।

क्षमायाचना।

कुछ आपत्ति से जून की अखण्डज्योति बहुत ही खराब छपी और ११ दिन लेट निकली, इसके लिए अनेक पाठकों ने पत्रों द्वारा रोष प्रकट किया है। अपना प्रेस न होने के कारण अप्रिय प्रसंगों को मन मारकर सहन करना पड़ताहै। आगे से ठीक छपाई की इसकी विशेष सावधानी से प्रयत्न करेंगे और जहाँ तक संभव होगा भविष्य में ऐसे कटु अवसर न आने देंगे। जून की खराब छपाई और लेट निकलने के लिए पाठकों से हम कर—बद्ध क्षमा प्रार्थी हैं।

—श्रीराम शर्मा।

जीवन का आदर्श क्या है ?

(ले०—आचार्य शशिकान्त झा, भोपालगढ़)

अधिकतर लोग खाने, पीने तथा आराम समन्वित भव्य भवन के वास को ही जीवन का आदर्श समझते हैं। उनका कथन है कि आवश्यकता के अनुकूल सामग्री की प्राप्ति ही आदर्श जीवन का लक्ष्य है, किन्तु वास्तव में आदर्श जीवन की परिभाषा सिर्फ पेट पालने तथा आलस्य की शय्या पर सुला देने वाली ही नहीं है।

मनुष्य सृष्टि के सब जीवों में अधिक दायित्व पूर्ण माना गया है, इसके शिर पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से बड़ी २ जिम्मेदारियां हैं, जिनको सफलता के साथ वह न करते हुए किनारे लगा देना ही जीवन का आदर्श है। माँ, बाप, भाई, बन्धु, स्त्री, पुत्र आदि के साथ कर्तव्य निभाते हुए परमार्थिक कर्तव्य पालन ही सच्ची मनुष्यता है। सिर्फ खाने, पीने तथा आराम से रहने में जीवन को सुखी समझना पशुता है। वस्तुतस्तु परमार्थ में अपनापन का त्याग ही जीवन का सच्चा आदर्श है।

बड़े-बड़े महापुरुष जिन्हें दुनियां वन्द्य समझती है, इसी एक पथ के पथिक रहे हैं। मनुष्यों की तो बात ही जाने दीजिये, सृष्टि के वे जीव जिनमें सिर्फ चेतनता है, उनका आदर्श भी तो यही त्याग है। फूल उपवन में अनेक रङ्गों तथा परिमल पुञ्जों को लिये खिलता है। भौंरे उसके रस का आस्वादन करते हैं, रसिकगण उसकी सुन्दरता से आँखों को तृप्त करते हैं तथा भीनी २ मीठी सुगन्धि से परमानन्द सुख का अनुभव करते हैं, बाद में वह झड़कर गिरजाता है और खाद बनकर फिर दूसरोंकी मदद करता है। इस तरह हम देखते है कि फूल का जीवन बिल्कुल परमार्थ तथा आदर्शमय है। अधिक क्या, देवता तक इसको माथे पर चढ़ाते हैं। किसी राज पथ के किनारे एक रसाल का पेड़ आतप, वर्षा तथा शीत पीड़ा को सहन करते हुए, पथ श्रान्त पथिक को शीतल छाया तथा फल प्रदान करता है। कोई उसकी डाली तोड़ कलश पूजते हैं तो कोई दतवन करते हैं तो कोई जलावन करते हैं मगर वह एक भाव से सबकी सेवा त्यागमय जीवन से करता है।

मेघ कितनी दिक्कत उठा समुद्र से जल लाकर भूतल पर सुधाभिषेक करता है, जिससे विविध अन्न से जो हम लोगों का जीवन है, उपजाता है। मगर मेघ अपना कुछ नहीं सोचता। सूर्य प्रतिदिन उदयाचल से अस्ताचल तक चलकर परमार्थ में जीवन त्याग का आदर्श बतलाता है। इस तरह हम देखते हैं कि परमार्थ में जीवन का त्याग ही जीवन का सच्चा आदर्श है। आज मानव समाज पाश्चात्य हवा के चक्कर में पड़ अपने इस उच्च कर्तव्य को भूलता जा रहा है। लौकिक भावों में उलझ पारलौकिक तत्वों से अपरिचित होता जा रहा है। त्याग, क्षमा, दया, विनय विवेक, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और सत्य की जगह क्रोध, लोभ, मद, क्रूरता, शठता, औद्धत्य, हिंसा, विषय एवं झूंठ जोर पकड़ता जा रहा है। पुण्य पर पाप, चन्द्र पर राहु की तरह आक्रमण ही नहीं करना चाहता वरन घर दबाना चाहता है। परिणाम भी खून खराबी अत्याचार तथा व्यभिचार हर रोज के दृश्य दृष्टिपथ में आते हैं। मनुष्य जब तक दानवीय गुणों को छोड़ मानवीय गुण का दामन नहीं पकड़ेगा तब तक इस संसार का कल्याण कथमपि सम्भव नहीं। जीवन का सच्चा आदर्श त्याग जब तक अपनाया नहीं जायगा संसार सुख से तब तक निश्चय ही दूर रहेगा।

क्या भाग्य बदल सकता है ?

अन्धे और गूंगों को शिक्षा देकर उन्हें योग्य बना देना, बन्दूक के घायलों या अन्य ऐसे ही मरणासन्न रोगियों को चिकित्सा करके बचा लेना, इस प्रकार की अनेक घटनाएं हम अपने जीवन में देखते हैं। यह इस बात की साक्षी हैं, कि बहुत अंशों में भाग्य को बदला जा सकता है। कर्जदार से साहूकार एक साथ सारा रुपया वसूल करे तो उसे बहुत कष्ट होगा, किन्तु यदि वह प्रयत्न करके साहूकार को यह विश्वास दिलादे कि धीरे २ वह किश्तों में चुका देगा तो वैसा मार्ग निकल सकता है जिससे तात्कालिक विपत्ति हट जाय और यदि अपने सुकृतों की कमाई बैंक में जमा करता जाय तो एक दिन उस हिसाब का जमा खर्च बराबर हो सकता है। इस प्रकार सञ्चित कर्म भोग यदि हो भी तो उसे हटाया जा सकता है। एक विद्वान् का कथन है, कि भाग्य बाजारू भाव के समान है जो थोड़ी २ देर बाद बदलता रहता है। समर्थ गुरु रामदास ने कहा है, कि भाग्य घोड़ा है और उद्योग सवार है। सवार जिधर चाहे उधर घोड़े को लेजा सकता है। लार्ड एवीं का मत है कि कोई व्यक्ति कितना ही भाग्यवान् क्यों न हो, यदि वह निरुद्योगी है तो कदापि सुख प्राप्त न कर सकेगा। कड़ी धूप के बाद छाया का आनन्द आता है. इसी प्रकार उद्योग के बाद उसके फल में सुख मिलता है। निरुद्योगी के लिये तो षटरस भोजन और मखमली गद्दे भी भार स्वरूप रहेंगे। सेम्युअल इस्माइल्स कहते हैं, कि भाग्य का भरोसा करना आलस्य को निमन्त्रण देना है और जिस मनुष्य या देश ने आलस्य को अपने में स्थान दिया, वह उसका कलेजा चाटकर मुर्दा बना गया। मराठों, पेशवाओं और मुगलों की सत्ता का नाश एवं रोम साम्राज्य का अधःपतन इस बात को चिल्ला २ कर कह रहे हैं कि उद्योग के विदा होने के साथ सौभाग्य भी विदा हो जाता है।

तत्वतः प्राचीन आचार्यों ने भाग्य वाद की रचना उस समय के लिये की थी, जब विपत्ति आ लेने के उपरान्त मनुष्य अपनी गलती महसूस करता है और आत्म ताड़ना के कारण बेचैन रहता है। यदि वह अपनी अयोग्यता की बात बहुत देर तक सोचता रहे तो सम्भव है कि वह कुछ समय में अयोग्य ही होजाय। इस लिये पिछली बातको भुला देने के लिये यह सिद्धांत था। प्राकृतिक नियमों के अनुसार कभी २ कुछ आपत्तियाँ हर मनुष्य पर अनिवार्यता आती हैं. इनको उद्योग द्वारा निवारण करने में भी कुछ समय लग ही जाता है, जितने समय तक यह विपत्ति हट न सके, उतने समय तक धैर्य धारण करने के लिये भी भाग्यवाद से मन समझाया जा सकता है। किसी प्रिय जन की मृत्यु जन्म जात अयोग्यता या आकस्मिक और असंबद्ध घटना उपस्थित हो जाने पर भाग्य की चर्चा की जा सकती है। क्यों कि उस समय उसकी आवश्यकता है। अन्य अवसरों पर खास तौर से उद्योग करके अपना कर्त्तव्य पालन करने के साथ भाग्य का सम्बन्ध जोड़ना निरी आत्म वञ्चना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। क्यों कि बड़े से बड़ा भाग्यवादी भी ऐसा नहीं मिलता जो भाग्य के भरोसे बैठा रहे और कर्त्तव्य करना छोड़दे। जब ज्योतिष के अनुसार यह मालूम होगया कि अमुक समय इतना हानि लाभ होने वाला है तो उद्योग करने की क्या जरूरत रही? भाग्यवाद पर बहस करने के लिये तो हमें बहुत व्यक्ति मिलते हैं, पर ऐसा व्यक्ति एक भी नहीं मिला जो स्वयं उस पर विश्वास करता हो. जितने दिन जीना है जिओगे, रोटी खाना-पीना बन्द कर दो, जो होनी होगी सो होगी। उद्योगी ही समृद्धि प्राप्त करते हैं, क्योंकि लक्ष्मी उद्योग की दासी है।

आत्मा के प्रकाश में चलिए।

[श्री० रतनचन्द्र जैन, गोटे गाँव]

मानव जाति सब योनियों से श्रेष्ठ मानी गई है जिसका मुख्य कारण मनुष्य के मस्तिष्क का विकास क्रम है। शास्त्र हमें उच्च आदर्श की ओर ले जाने में सहयोग दे रहे हैं, स्वभावतः जीव का स्वभाव उर्ध्वगमन है, किन्तु हम अधोगति को जा रहे हैं इसका कारण सिर्फ हमारी आत्म अवहेलना, चारित्र हीनता ही कही जा सकती है।

मनुष्य के मानसिक जगत में विवेक रूपी पवित्र ईश्वर हमें निरन्तर प्रकाश देता है, किन्तु जिस तरह फिल्म की अश्लीलता को फोकस फेकने वाला लाइट, नहीं बदल सकता, बल्कि उसका कार्य फिल्म की तस्वीर को पटल पर प्रकाश रूप में दिखाना मात्र है इसीलिये इस आत्मा रूपी फोकस लाइट को निर्दोष बताया गया है। हां! यह अवश्य है कि संचालक यदि निपुण हो तो फिल्म की अश्लीलता को शीघ्रता से हटाकर बता सकता है ठीक इसी तरह विवेकवान् पुरुष अपने कुत्सित संस्कारों को धर्म रूपी शस्त्र से काटकर संसार के पटल क्षेत्र पर कार्य निपुणता, धार्मिकता, एवं सदाचारी कहा जा सकने की शक्ति रखता है पूर्व संचित कर्मों से इन्कार नहीं किया जा सकता, किन्तु घोड़े का सवार कोड़े के आश्रय से अड़ियल घोडे को अच्छा बना लेता है तब हमें निराश होने की आवश्यकता नहीं है इस मन रूपी घोड़े का धर्म रूपी चाबुक से अवश्य सुधार कर सकते हैं।

बन्धुवों! सत्य मार्ग ही हमें सत् की ओर आर्किषत करता है जो सत् है वह अविनाशी है, हमारी अमर अविनाशी आत्मा ही सत् शोधक है हमें आत्मा का अनुकरण करना चाहिये यही हमारा सत्गुरु है इसी का संग करना ही सतसंग है यह गांठ में बांधकर याद कर लीजिये कि मन की चंचल वृत्ति को आत्म प्रेरणा नहीं समझना। आत्म प्रेरणा तो निश्चल होकर मन की चंचल वृत्तियों को रोककर प्रारम्भ होती है 'योग' वगैरह की क्रियायें हमें चित्त को एकाग्र ही बनाने को संकेत करती हैं।

गीता का उपदेश है कि निष्क्रिय होकर कार्य करते रहो निष्क्रियता से हमें मोह का आभास नहीं होता है इस मोह का कारण दुख है और प्राणी दुख से छुटकारा पाना चाहता है। निस्वार्थ का अर्थ यही है कि जब हमें स्वार्थ से ममत्व नहीं होगा तो हमसे अनुचित कार्य न होगा जिससे हम हमेशा उच्च आदर्शवान बनते जावेंगे कामना रहित कार्य करते रहने से दुख, चिंता पास नहीं आ सकती, तात्पर्य यही है कि इस कर्म क्षेत्र में सच्चरित्रवान होकर कार्य करो यही सफलता प्रदान करेगी कर्मयोगी के लिये सफलता स्वयं चली आती है सम्पूर्ण धर्म शास्त्र हमें यही शिक्षायें दे रहे हैं। खान पान, रहन सहन, श्रद्धा, पूजा स्तुति यह हमें उच्चतम श्रेणी पर ले जाने के साधनमात्र हैं हमें मूल तत्व यही ग्रहण करना चाहिये कि अपनी आत्मा का कल्याण करें तथा आत्मा के प्रकाश के मार्ग को ग्रहण करें और जो मार्ग हमें भीरु बनाते हों अकर्मण्य बनावें अथवा जो संसार के पटल क्षेत्र में निंदनीय हों त्यागना चाहिये, झूठ चोरी परस्त्री गमन, क्रोध लोभ मोह, जो हमारी आत्मा के प्रकाश को ढँक लेते हैं उनका सर्वथा त्याग करें और सत्कर्मों को करने उत्साह पूर्वक प्रवृत्त रहें।

तुम जीने की ही चिन्ता में पड़े रहते हो और जिससे जीवन बना है उस 'समय' को पानी की तरह बहा देते हो। यह कहाँ की बुद्धिमानी है?

×

साक्षी देने वाली छाया मूर्ति

प्राचीन कालमें उत्तर इंग्लैण्ड की डारहम शायर बस्ती की चेस्टर लीस्टीर पर वाकर नामक एक श्रम जीवी रहता था। धर्मपत्नी के देहावसान के बाद उसका घर सुनसान होगया पर फिर एक दिन समय ने पटला खाया। एक निराश्रित युवती से उसकी घनिष्टता बढ़ी और युवती का वाकर के घर आना जाना शुरू होगया। दोनों के दिन सुख पूर्वक व्यतीत होने लगे। घटनाक्रम आगे बढ़ा और युवती ने गर्भ धारण कर लिया।

पुराने समय में इंग्लैण्ड के अशिक्षित लोग भी बड़े दकियानूसी विचारों के होते थे। एक अविवाहित स्त्री को गर्भवती होना विरोध का कारण था, उस समाज में कानाफूसी होने लगी और वाकार की ओर उंगलियां उठना आरम्भ हुआ। युवती और विधुर दोनों ही लज्जा का अनुभव करने लगे।

मार्क शार्प नामक एक दूसरा मजदूर जो वाकर का घनिष्ट मित्र था एक दिन कुछ विशेष मन्त्रणा के लिए आया और घुट घुट कर घंटों बातें करता रहा। दूसरे दिन एक सलाह ठहराई गई कि युवती को एक दूसरे मकान में रखा जायगा और जब उसका प्रसव होजायगा तो वापिस आजायगी, शार्प के साथ उसे किसी अज्ञात स्थान के लिए रवाना कर दिया गया। फिर किसी को पता न चला कि वह कहाँ गई और उसका क्या हुआ।

× ×

जेम्स ग्राहम, वाकर का ही एक पड़ौसी था उसने आटा पीसने की एक छोटी सी चक्की खोल रखी थी। उस बस्ती में एक ही चक्की होने के कारण काफी अन्न पिसने को आता था और कभी कभी तो उसे रात को भी काम चालू रखना पड़ता था। एक दिन बहुत रात गुज़रे उसका काम समाप्त हुआ। तब कहीं घर जाने का अवकाश मिला।

कारखाना बन्द करके हाथ में लालटेन लिये हुए ग्राहम उस कड़ाके की ठंड में घर की ओर तेजी से बढ़ता चला जारहा था। चारों ओर सन्नाटा था और धीरे धीरे बर्फ झड़ रही थी, घर उसका दो मील दूर था। इस जन शून्य रास्ते में इतनी रात गये किसी मनुष्य का दर्शन होना कठिन बात थी। ग्राहम ने एक चौमुहाने के पास देखा कि कोई स्त्री सिर के बाल बखेरे हुए उसकी ओर बढ़ती चली आरही है। ग्राहम ने संदेह निवारणार्थ अपनी लालटेन को जरा तेज किया तो देखा कि एक साधारण स्त्री है। पर हैं, यह क्या? इसके शिर में तो तीन इतने गहरे गहरे घाव हैं और उनमें से खून की धाराऐं बहरही हैं। फिर भी वह चुप है और सामने आकर खड़ी होगई है। वह इसका कुछ भी कारण न समझ सका।

ग्राहम ने अधिक गंभीर होकर पूछा—"आप कौन हैं? इस समय किस काम से जारही हैं और मुझ से क्या चाहती हैं?" स्त्री ने अत्यन्त ही दुख भरी कातर वाणी में कहा—ग्राहम! क्या आप मुझे भूल गये? वाकर के मकान में आज से कुछ मास पूर्व एक अभागी युवती रहती थी क्या तुम उसे नहीं पहचानते? वही तो मैं हूं। जब मैं गर्भवती हुई तो अज्ञात स्थान पर रखने के बहाने वाकर ने मुझे शार्प के साथ भेज दिया। मैं निस्संकोच चली गई। रास्ते में जब जरा अँधेरा होगया तो शार्प ने पीछे से मेरे शिर में कोयला खोदने की कुदाली मारी। मैं भूमि पर गिरकर जब तक मर नहीं गई तब तक उसने उसी कुदाली के तीन प्रहार किये। मेरे शिर में यह जो घाव देख रहे हो उन्हीं प्रहारों के हैं। मेरी मृत्यु के बाद शार्प ने अपने खून से सने हुए कपड़े, जूते, मोजे और वह कुदाली इन सबको मेरे लाश के साथ पास वाली कोयले की खान में पटक दिया। अब मेरा प्रेत शरीर

आपके सामने खड़ा हुआ है। मैं रोष और प्रतिहिंसा की ज्वाला से जल रही हूं। तुम्हारे अन्दर आध्यात्मिक चुम्बकत्व देख कर मुझे प्रकट होने में सुगमता हुई। मैं अब एक बात चाहती हूँ कि तुम सारा वर्णन किसी राज्याधिकारी से करके उन दुष्ट दुराचारियों को दंड दिलाने का प्रयत्न करो। इतना कहकर वह छाया अदृश्य होगई।

ग्राहम बड़े असमंजस में पड़े, उन्हें विश्वास न हुआ कि मैंने यह वास्तविक घटना देखी है या स्वप्न। वह डरता काँपता अपने घर पहुँचा और सारी रात इसीके सोच विचार में पड़ा रहा। दूसरे दिन उसने किसीको सूचना न पहुंचाई तो तीसरे दिन फिर वही छाया मूर्ति उसी विकराल वेष में फिर प्रकट हुई और कर्कश स्वर में इतना कह कर अन्तर्ध्यान होगई कि—"क्यों तुम मेरी सूचना न पहुँचाओगे?"

ग्राहम से अब न रहा गया वे सीधे पास की अदालत में पहुंचे और सारी घटना का वर्णन कर दिया। पुलिस को तथाकथित स्थान पर भेजा गया तो कोयले की खान में वे सभी वस्तुऐं पाई गई जिनका वर्णन ग्राहम ने किया।

अदालत की आज्ञानुसार बाकर और शार्प पकड़े गये उन पर मुकदमा चला तो वही छाया मूर्ति जजों के सम्मुख साक्षी देने आई। डारहम को सैशनजज और जूरियों का फैसला सुनने के लिए हजारों दर्शक न्यायालय में उपस्थित थे। जब अपराध और अपराधियों के सम्बन्ध में पूरा २ विश्वास कर लिया गया तो न्यायाधीशों ने उन क्रूर कर्मों को यथेष्ठ दण्ड देकर अपने कर्तव्य का पालन किया।

सार्जेन्ट हाटन नामक व्यक्ति के पास उपरोक्त जज का एक पत्र पाया गया है जिसमें इस सारी घटना का वर्णन है। उस पत्र के आधार पर इसकी सचाई में अविश्वास करने की गुंजायश नहीं रहती।

महात्माजी के उपदेश

(संग्रह कर्ता श्री धर्मपालसिंहजी रुड़की)

---

(१) अहंकार को त्याग दो। दूसरों में दोष देखने की दृष्टि को छोड़कर गुणदर्शी बनो। अपने साथ पेश आने वाली प्रत्येक घटना में शुभ फल की ही भावना रक्खो, क्योंकि संसार में सब कुछ व्यवस्थित रूप से चल रहा है। जो भी होरहा है सब कल्याण के लिए होरहा है। अतएव विपत्ती में कष्ट में धैर्य्य रक्खो। देखो! यह दुःख दर्द तुम्हारे भविष्य के लिए छिपे हुए रूप में आर्शीवाद हैं—प्यारो! चिन्ता और शोक के शिकार न बनो।

(२) चिन्ता के समय कातर होकर प्रभु का स्मरण करो। जो कुछ अपना समझते हो उस सब को उस असली मालिक को सौंप दो और फिर अपने आपको उनके चरणों पर भेंट चढ़ाकर निश्चिन्त हो जाओ फिर तुम एक अद्‌भुत जीवन का सुख अनुभव करोगे। एक मुसलमान भक्त अपने वाणी में इसीको कहते हैं :—

उठ 'फरीदहा' जिकर कर, फिकर करेगा आप।
जिनका यह निश्चय नहीं, उनको हैं संताप॥

(३) सदैव अपने भविष्य जीवन पर गहरी दृष्टि रक्खो। उसे सत्कर्मों से भरदो ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखकर उत्साह से जीवन व्यतीत करो देखो! जिन्दगी में परिवर्तन होते ज्यादा वक्त नहीं लगता।

(४) अपने आपस के बर्ताव और व्यवहार को ठीक करो। अपनी किसी बात को दूसरों से हठ पूर्वक मनवाने की चेष्टा न करो। अपनी भूल को मान भंग होने का झूठा भय मानकर स्वीकार करने में लज्जा संकोच न करो। देखो! भूल मान लेने से किसी प्रकार की हानि नहीं होती, बल्कि ठीक रास्ता हाथ आता है।

चतुर कौन है ?

(समर्थ गुरु रामदास)

काला मनुष्य गोरा नहीं हो सकता इसी प्रकार कुरूप का सुन्दर, गूंगे का वाचाल, पंगु का द्रुतगामी होना कठिन है, इच्छा करने से कुरूपता नहीं जाती पर हाँ, मूर्खता अवश्य चली जाती है। इसलिए चतुर मनुष्य अपनी अविद्या और कुटेवों को ढूंढ कर त्यागने और उनके स्थान पर सद्ज्ञान एवं सत् स्वभावों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करते रहते हैं। जो व्यक्ति प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहता है, उसे चाहिए, कि अपने सद्गुणों की वृद्धि करने में जी जान से जुट जावे। जो शिक्षा ग्रहण नहीं करता, उद्योग नहीं करता, परिश्रम नहीं करता, अपनी त्रुटियों को ढूँढ कर उनका संशोधन नहीं करता निश्चय समझिये कि वह जीवन फल प्राप्त न कर सकेगा। हम पूछते हैं, कि तुम क्या चाहते हो ? यह कि लोग तुमसे प्रसन्न रहें और मित्र भाव बरतें ? या यह कि सब लोग अप्रसन्न होकर तुम्हारे ऊपर टूट पड़े ? सुनो, तुम दूसरों के साथ जैसा बरताव करोगे तो भी तुमसे वैसा ही व्यवहार करेंगे। जो न्याय का व्यवहार करता है वह चतुर है, क्योंकि दूसरे भी उससे न्याय का व्यवहार करेंगे, सज्जन को ही सुख शान्ति और सहानुभूति भरा व्यवहार प्राप्त होता है। जो निर्दयी, अन्यायी और अहंकारी हैं, उसे स्वयं भी दूसरों के अन्याय, अहंकार का भागी बनना पड़ेगा। दूसरों को दुख देने वाला सुखी जीवन नहीं बिता सकता।

सुख, वैभव, ऐश्वर्य और कीर्ति सब लोग चाहते हैं, परन्तु तन-मन से परिश्रम किये बिना स्थायी रूप से इनमें से एक भी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। आलस्य सुख का शत्रु और उद्यम आनन्द का सहचर है, जो इस तथ्य को भली भांति समझता है वह भाग्यवान है, वही बुद्धिमान है, वही चतुर है, बहुतों की जबान पर रहना, बहुतों के हृदय में रहना, बहुतों के साथ रहना, संसार में धर्म बढ़ाना और पतितों को पवित्र करना, यही तो चतुरता के लक्षण हैं।

सच्ची क्षमा।

(श्री मुरारीलाल शर्मा 'सुरस' मथुरा)

मनु भगवान ने धर्म के दस लक्षणों का वर्णन करते हुए क्षमा को दूसरे स्थान पर रखा है। निस्सन्देह क्षमा एक उत्तम गुण है. यदि अपराधों का बदला लेने की प्रवृत्ति पर जोर दिया जाय तो इस संसार में इतना कलह और उत्पात उठ खड़ा होगा, जिसकी भयंकरता के कारण कोई भी चैन से न बैठ सकेगा। अल्पज्ञ और निर्बल लोगों से अकसर भूलें होती हैं, बड़ों का कर्तव्य है कि इन बड़ी उम्र के बालकों को माफ करके अपनी महानता का परिचय दें। लोग पृथ्वी की छाती पर पदाघात करते हुए घूमा करते हैं, परन्तु धरती माता किसी पर कभी रोष नहीं करती। छोटे बच्चे अकसर माता पिता के साथ अशिष्टता का व्यवहार किया करते हैं तो भी उन्हें क्षमा ही प्राप्त होती है।

परन्तु एक बात विशेष रूप से ध्यान रखने की है, कि दण्ड देने की परिपूर्ण शक्ति रखने वाला व्यक्ति ही निर्बल अपराधी को क्षमा कर सकता है। कमजोर आदमी बलवान से पिटता है जब कुछ बस नहीं चलता तो कहता है-"मैं" क्षमा शील हूँ, यह आत्म वंचना है। क्षमा का उपहास करना है। जिसमें दण्ड देने की बदला लेने की शक्ति ही नहीं, वह बेचारा किसे क्षमा करेगा ?

क्षमा धर्म का पालन करने के लिए सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि बलशाली बना जाय, शक्ति का संचय किया जाय। निर्बलों की क्षमा सदैव कायरता और दुर्बलता ही कही जाती है। इससे क्षमा का उपहास होता है, लोग ऐसे धर्मात्मा पर और मुस्काते हैं और ताने कसते हैं।

बलवान अत्याचारी का विरोध करना चाहिए। अन्याय करने वाले का मुकाबिला करना चाहिए नहीं तो उसकी दाढ लपक जायगी और अनीति के मार्ग पर निर्भय होकर चलने लगेगा। महात्मा सुकरात ने कहा है कि—"जो दुष्ट को माफ करता है, वह नहीं जानता, कि आदम की औलाद के साथ क्या गुनाह कर रहा हूँ।"

भूख जनित अपराध।

(श्री रामदयाल जी गुप्ता, नौगढ़)

दरिद्रता को अपराधों की जननी कहा गया है। हमारे देश के अधिकांश अपराधी ऐसे होते हैं जो पेट की असह्य ज्वाला से पीड़ित होकर चोरी आदि अपराधों में प्रवृत्त होते हैं। मैं अपने अनुभव की बिलकुल सच्ची दो घटनाएं लिख रहा हूं।

(१)

घर में माँ बेटी दो ही प्राणी हैं। बेटी की उम्र १०—११ साल है। वह दो तीन घरों के बर्तन माँज कर, जो कुछ पाती हैं उसी को खाकर दोनों गुजारा कर लेती हैं। इस मँहगाई के जमाने में जो थोड़े पैसे मिलते हैं वे पूरे महीने का खर्च चलाने के लिए काफी नहीं होते। महीने के अन्तिम दिनों में भूखों मरने की नौबत आजाती है।

एक दिन घर में अन्न का एक दाना भी न रहता। मां तो किसी प्रकार पेट बाँधे पड़ी रही पर बेटी से न रहा गया। वह बहुत देर रोती रही आखिर उसकी बाल बुद्धि को एक उपाय सूझा। वह चुपके से गई और जिस मालिक के यहां बर्तन माँजती थी, उस घर में छींके के ऊपर रात बचा हुआ भात रखा था, उसे चुरा कर खाने लगी।

अच्छी तरह पेट भर भी न पाई थी घर वालों ने देख लिया। अब क्या था, सब का क्रोध उस पर बरसने लगा, जो आता वही मनमानी कहता। पुलिस में पहुँचाने की और सजा दिलाने की तैयार होने लगीं। घटनास्थल पर बहुत से आदमी जमा हुए, बालिका ने रो रो कर भूख की व्याकुलता के कारण चोरी करने का वृत्तान्त कहा। आखिर कुछ भले लोगों ने मालिक को समझा बुझाकर उस कहार बालिका को छुड़वा दिया।

(२)

एक दुर्बल काव्य-व्यक्ति खेत में से एक कोहड़ा (काशीफल) चुरा कर तोड़ रहा था। किसान ने देख लिया और भाग कर चोर को पकड़ लिया। उसे थाने पहुँचाया गया। पुलिस ने अपराधी को अदालत में पेश किया।

न्यायाधीश ने अपराधी से चोरी का कारण पूछा। चोर ने कहा—हुजूर! दो रोज से अन्न का एक दाना भी प्राप्त न होने के कारण मैंने एक काशीफल चुराया। इसे उबाल कर खाने से एक दो दिन काटने की इच्छा थी, परन्तु पकड़ा गया और आपके सामने मौजूद हूं।

अदालत ने उसे आगे चोरी करने की चेतावनी देकर छोड़ दिया।

आजकल हमारे देश में इसी श्रेणी के अपराध बहुत हो रहे हैं। अन्न वस्त्र के दाम इतने ऊंचे होगये हैं, कि गरीब लोगों को उदर की ज्वाला शान्त करना कठिन हो रहा है। मैंने अभी कुछ दिन हुए एक १॥-२ साल के बच्चे को भूख के मारे कंकड़ चबाते देखा है। ऐसी दशा में भूख जनित अपराधों की वृद्धि हो तो आश्चर्य क्या है।

जिन्हें ईश्वर ने समर्थ बनाया है उन्हें चाहिए कि इस प्रकार भूखों मरते हुए लोगों की जिस प्रकार भी सम्भव हो सहायता करने का प्रयत्न करें, इस प्रकार की थोड़ी सी सहायता भी बड़े यज्ञ के समान फलदायी होती है।

———

ब्रह्मानन्द

[रचयिता—श्री० महावीरप्रसाद विद्यार्थी, टेढ़ा-उन्नाव]

(१)

बैठ बसन्त के सुन्दर अङ्क में नन्दन—सा खिलता रहेगा।
भानु-विभीषिका में यह राग-सुहाग सभी जलता रहेगा॥
पाला हुआ तन पावस का पतझार मे ये गलता रहेगा।
सर्जन और विसर्जन का क्रम नित्य यहां चलता रहेगा॥

(२)

उलझा हुआ मानव! आँसुओ की लड़ियाँ अपनी क्यों पिरो रहा है?
व्यर्थ विषाद की कालिमा से मन की यह लालिमा धो रहा है॥
घेर में खिली स्वर्ण-लता उसके लिये विह्वल सा हो रहा है।
देख रहा सपना यह कौन-सा? जगा रहा है कि सो रहा है॥

(३)

सरिता यह मानव-शोणित की वसुधा-तल पै लहरा रही है।
सुख औ दुख के भ्रम-पूर्ण-निशा-तम में जगती चकरा रही है॥
दृग मींचे हुए यह घोर अशान्ति की ओर बढ़ी चली जा रही है।
मुँह मोड़ के देख अरे! इस ओर तो मंजु उषा मुसका रही है॥

(४)

छलनामयी कामना जीवन-कुञ्ज में शूल नहीं बिखराती जहाँ।
मलयानिल से इठलाती सनेह की धारा सदा लहराती जहाँ॥
जलती वसुयाम वियोग की आग में आशा विहाग न गाती जहाँ।
नव सौरभ से सनी दिव्य प्रभा नित शांति-सुधा बरसाती जहाँ॥

(५)

चल तू वहीं शृङ्ग खड़े जो अड़े उनपै हँसता चढ़ता चला जा।
हहरा रहा है, उमड़ा रहा है जल, निर्भय हो बढ़ता चला जा॥
यह कण्टक पूर्ण अरण्य यहाँ अपना पथ तू गढ़ता चला जा।
नित गीत नये-नये गाता हुआ, मुसकाता हुआ बढ़ता चला जा॥

(६)

कौन है तू, पहचाना कभी, अब तोड़ दे ये अपने प्रिय बन्धन।
मानव, तू तो गिरा हुआ है पशु से भी, टटोल अरे! अपना मन॥
मायामयी इस वासना के भ्रम-जाल में खो रहा क्यों अपना पन।
ज्योति अखण्ड है जाग रही उसमें लय तू करदे यह जीवन॥